दुनिया के मजदूरो एक हो!

बिगुल

मासिक बुलेटिन • प्रवेशांक • अप्रैल 1996 • दो रुपये • आठ पृष्ठ

लोकसभा चुनाव

चुनना सिर्फ यह है कि ठगों-लुटेरों-अपराधियों का कौन सा गिरोह हम पर हुकूमत करेगा!

यह घिनौना खेल तबतक जारी रहेगा जबतक मेहनतकशों की इंकलाबी राजनीति का झण्डा आगे नहीं बढ़ेगा!

एक माह बाद लोकसभा चुनाव होने वाले हैं। एक माह तक प्रचार और भाषणों की चीख-पुकार से जीना मुहाल होगा। एक माह तक कपट, फरेब और झूठे वायदों के नये-नये नमूने देखने को मिलेंगे। एक माह तक सभी अपराधी व्यस्त रहेंगे। एक के बाद एक अनगिनत घपलों-घोटालों और बेहिसाब बढ़ती साम्राज्यवादी-पूंजीवादी लूट, मंहगाई-बेरोजगारी, तबाही-बर्बादी के पांच वर्ष बीतने के बाद, फिर भारतीय लूटतंत्र का पंचसाला चुनावी मेला सज रहा है।

लगातार बेरौनक होते जा रहे इस मेले में इस बार खेल-तमाशे बहुत कम आये हैं। बस पुराने भांडों की मंडलियां हैं और जेबकतरों की भीड़। फिर भी पंचसाला रस्म है। मेला सजेगा और बेमन से ही सही, जनता उसमें हिस्सा भी लेगी, क्योंकि फिलहाल उसके पास और कोई राह नहीं है।

इस लोकसभा चुनाव में न कोई नारा है, न कोई मुद्दा। टूटे रथ हैं। फटे, बदरंग चिथड़ेनुमा झण्डे हैं - कहीं सदाचार, अनुशासन और हिन्दुत्व का पताका, कहीं स्थायित्व और 'गरीबी हटाओ' का झण्डा तो कहीं "सामाजिक न्याय" का झण्डा। तिकड़में भी पुरानी हैं - जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर जनता को बांटना तथा एक बार फिर खूब वायदे करना। पर बुनियादी मुद्दों पर सभी चुनावी मदारी एक हैं। किसी भी चुनावी पूंजीवादी या नकली वामपंथी पार्टी के पास उदारीकरण-निजीकरण की लुटेरी आर्थिक नीतियों से अलग कोई नीति नहीं है। वजह यह है कि पूंजीवादी दायरे के भीतर अब यही एक राह बची है, चाहे वोट भुनाने के लिए कोई भी विपक्षी दल 'स्वदेशी' का नारा जितना भी लगा ले। संसदीय राजनीति करने वाली सभी पार्टियां पूंजीपतियों और विदेशी लुटेरों की टट्टू हैं, सिर्फ इनकी औकात और भूमिका अलग-अलग हैं जो अलग-अलग दौरों में बदलती भी रहती हैं।

भ्रष्टाचार की गंदगी जब सड़कों पर बजबजाने लगी तो इसे "साफ" करने को मुद्दा बनाया नरसिंह राव ने। ताकि सबका दामन गंदा दिखाकर और अपने ही कुछ मुसाहिबों की बलि चढ़ाकर वे अपना दामन साफ साबित कर सकें और चुनावी गोटी लाल कर सकें तथा साथ ही पूंजीवादी संसदीय प्रणाली की गिरती साख भी कुछ हद तक बहाल कर सकें। पर वे सफल नहीं हुए। जनता उन्हें आज भी भ्रष्टाचारियों का सिरमौर मान रही है और अब वह मान चुकी है कि पूंजीवादी चुनावी राजनीति में अरबों-खरबों के घपले-घोटाले अब आम बात बन चुके हैं। और दरअसल बात भी यही है। पूंजीवादी लूट की संस्कृति जो आज अपने चरम पतित रूप में है, वह भला राजनीति के क्षेत्र में भी क्यों न दीखे। लुटेरों के राजनीतिक हितों की सेवा करने वालों से सदाचारी होने की उम्मीद भला की ही कैसे जा सकती है। आज भारतीय पूंजीवाद के प्रतिनिधि ऐसे ही पतित चोट्टे और गिरहकट ही हो सकते हैं। हम जोर देकर कहना चाहते हैं कि बुनियादी मुद्दा आज भ्रष्टाचार नहीं बल्कि इस जालिम पूंजीवाद की अंधी लूट है। भ्रष्टाचार पूंजीवाद के दामन का दाग है, उसे साफ करने की चिन्ता उनकी है जो इसके सेवक-संतरी और हितू हैं, उनकी नहीं जो इस पूरी पूंजीवादी व्यवस्था के खिलाफ ही लड़ना चाहते हैं। वे जानते हैं कि आज के समय में सदाचारी पूंजीवादी राजनीति की उम्मीद हवाई चीज़ है।

वर्तमान लोकसभा चुनाव में मेहनतकश जनता को चुनना सिर्फ यह है कि चोरो-लुटेरों-ठगों-अपराधियों का कौन सा गिरोह उस पर शासन करेगा? सवाल सिर्फ यह है कि संसद नामक बहसबाजी के राष्ट्रीय अड्डे में सवाल कौन करेगा और जवाब कौन देगा? सवाल सिर्फ यह है कि संसदीय सुअरबाड़े में किस नस्ल के सुअर किधर बांधे जायेंगे?

सभी चुनावी पार्टियों की एक ही रट है - 'तुम हटो अब मैं बैठूंगा', 'तुम काफी छक लिये अब मैं छकूंगा', 'तुम नहीं अब मेरी पारी है लूटने की', 'तुम नहीं, देशी-विदेशी थैलीशाहों का ज्यादा वफादार सेवक मैं हूं'... वगैरह-वगैरह। लुटेरे कभी मिल-बांटकर नहीं खाते। नोचखसोट, झींनाझपटी, कुत्ताघसीटी लाजिमी है। वह जारी है आज, अपने चरम रूप में।

भारतीय थैलीशाह और उनके विदेशी बड़े भइया लोग भी यही सोच रहे हैं कि अपनी थैली का जोर लगाकर, अपने अखबारों व प्रचार माध्यमों से हवा बनाकर वे किसे तख्ते ताऊस तक पहुंचायें, किसे शासन सौंपें। इस ऊहापोह में हो सकता है कि संसद में किसी का भी स्पष्ट बहुमत न हो। और तब अवसरवादी गंठजोड़ों, पालाबदल और पैंतरापलट के नये-नये करिश्मे देखने को मिलेंगे। साथ ही, यह खतरा भी बना रहेगा कि कोई भी कम बहुमत वाली सरकार हुकूमत के बढ़ते संकट के इस दौर में खुली तानाशाही का रूप धारण कर ले।

एक बात तय है कि अपने तमाम घिनौनेपन के बावजूद यह पंचसाला चुनावी खेल तबतक जारी रहेगा जबतक मेहनतकश जनता के हितों की नुमाइन्दगी करने वाली क्रान्तिकारी राजनीति का झण्डा फिर से आगे नहीं बढ़ेगा, जबतक कि देश भर के सच्चे सर्वहारा क्रान्तिकारी एकजुट होकर साम्राज्यवाद-पूंजीवाद विरोधी नई समाजवादी क्रान्ति को अंजाम देने के लिए आगे नहीं बढ़ेंगे। यह राह चाहे जितनी कठिन और लम्बी हो, वास्तविक मुक्ति की राह यही है।

मेहनतकश जनता को इस राह के बारे में सोचना ही होगा। बहुत देर हो चुकी है। अब और देर करना घातक होगा।

विशेष सम्पादकीय

एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत

आज एक **नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार** की जरूरत है। **बेहद, बुनियादी** और **फौरी** जरूरत है। बल्कि इस मामले में पहले ही देर हो चुकी है।

बेहतर तो यह होता कि एक अखिल भारतीय पैमाने का, कम से कम साप्ताहिक, अखबार होता जो सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में एक साथ छपता। मगर आज यह संभव नहीं है। देश के अधिकांश या कम से कम कुछ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ग्रुपों, संगठनों की संयुक्त शक्ति के बूते पर ही इसे संभव बनाया जा सकता है। अभी यह संभव नहीं है, क्योंकि क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच तमाम उसूली और अमली मतभेद मौजूद हैं। इसलिए फिलहाल एक मासिक बुलेटिन से हम शुरुआत कर रहे हैं। इसे आगे हर पखवारे और फिर हर हफ्ते निकालने की कोशिश की जायेगी।

हम एक ऐतिहासिक तूफानी दौर की चौखट पर खड़े हैं!

(पेज 4 पर जारी)

पेरू : जुल्म के अंधेरे में चमकता लाल निशान

रुके न जो, झुके न जो, दबे न जो, मिटे न जो हम वो इंकलाब हैं, जुल्म का जवाब हैं!

पेरू - मेहनतकश जनता की क्रांतिकारी उम्मीदों का एक बिन्दु, साम्राज्यवादी-पूंजीवादी जोरो-जुल्म के खिलाफ लगातार लड़ने की, आखिरी विजय तक लड़ते चले जाने की जनता की अकूत क्षमता और अजेयता का एक निशान!

यहां से दूर, पृथ्वी के एकदम दूसरे छोर पर, दक्षिण अमेरिकी महादेश के इस छोटे से देश के किसानों-मजदूरों के बहादुर इंकलाबी सपूतों ने बेमिसाल कुर्बानियां देकर मजदूर क्रांति की जो मशाल आज के अंधेरे में लगातार जलाए रखी है, वह धीरे-धीरे पूरी दुनिया को आलोकित करने लगी है। साम्राज्यवादी डाकू सरदार महाबली अमेरिका के ऐन पिछवाड़े जंगे-अवामी का कोहराम मचाकर, उसकी पूंछ में पलीता लगाकर पेरू के गरीबों-मेहनतकशों ने साबित कर दिया है कि साम्राज्यवाद आज भी एक कागजी बाघ है और यह कि आखिरी जीत सर्वहारा क्रान्ति की ही होगी।

फूजीमोरी की अमानवीय जेल में कैद चेयरमैन गोंजालो

पेरू के मेहनतकशों की सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी - **पेरू की माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी** के नेतृत्व में जारी किसानों-मजदूरों के हथियारबन्द क्रान्तिकारी संघर्ष का इतिहास लगभग पंद्रह वर्ष पुराना है। पर इस क्रान्तिकारी पार्टी के गठन की तैयारी तो तीस वर्षों पहले ही शुरू हो चुकी थी। वैसे पेरू में कम्युनिस्ट पार्टी पहले से ही मौजूद थी। 1928 में पेरु के महान क्रान्तिकारी **मारियातेगुई** ने इसकी स्थापना की थी। लेकिन 1950 से 1960 के बीच इस पार्टी ने भी **मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन** के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों और मारियातेगुई के रास्ते को छोड़कर गद्दार ख्रुश्चेव को अपना कनफुंकवा गुरू बना लिया और उसके सिखाये सुधार-समझौते के गुरूमंत्र को जपते हुए साम्राज्यवादी और देशी शासकों के सत्ता मंदिर की घण्टी डोलानी शुरू कर दी। और चुनावी टंट-घंट में लग गई। ठीक भारत की सी.पी.आई., सी.पी.एम. और विनोद मिश्र की सी.पी.आई. (एम.एल.) की तरह। सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी को पेरू के गद्दार कम्युनिस्ट नेतृत्व ने भी भारत की ही तरह चर्वान्नया मेम्बरी वाली, खुली, सुधारवादी, चुनावलड़ाकू, बातबहादुर पार्टी बना दिया। तब, 1964 के आसपास **कामरेड गोंजालो** के नेतृत्व में, ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के खिलाफ **माओ त्से-तुङ** के क्रान्तिकारी मार्ग को चुनकर एक सही-सच्ची कम्युनिस्ट पार्टी फिर से बनाने के लिए लम्बी उसूली लड़ाई और राजनीतिक सांगठनिक तैयारी शुरू हुई। उन्होंने जल्दबाजी नहीं की और विचारों से मजबूत तथा जनता में गहरी जड़ों और लम्बे-चौड़े आधार वाली पार्टी की नींव डाली।

1979 में जाकर बाकायदा पार्टी का गठन हुआ और मई, 1980 में **अयाकुचो** प्रांत में मतपेटिकाओं पर कब्जा करके क्रान्तिकारी लोकयुद्ध की शुरुआत कर दी गई। तीन-चार वर्षों के भीतर ही पार्टी के क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार और आन्दोलन एवं संघर्ष की कार्रवाइयों ने गांवों के गरीबों के बीच पार्टी का खासा आधार तैयार कर दिया। यही नहीं, राजधानी **लीमा** के अलावा तमाम प्रांतीय शहरों की झुग्गी बस्तियों के गरीबों, मजदूरों और छात्रों के बीच भी पार्टी का काम फैलने लगा। देहाती क्षेत्रों में छापामार युद्ध उस हद तक विकसित हो गया कि बहुतेरे इलाकों में सत्ता की पकड़ बस नाममात्र की ही रह गई। न सिर्फ पेरू के सत्ताधारी कांप उठे, बल्कि उनके अमेरिकी आकाओं की भी नींद हराम हो गई। बदहवासी में तानाशाह बदलते रहे। भ्रम फैलाने के लिए दो-दो बार चुनाव के नाटक भी हुए। तानाशाह बेलौण्डे, फिर नकली जनतंत्रवादी गार्सिया और फिर तानाशाही फूजीमोरी। अरबों डालर की अमेरिकी आर्थिक मदद, हथियारों की मदद और फिर सैनिक सलाहकार भेजे गये। पर कुछ भी काम न आया। हालात यहां तक आ गये कि क्रान्तिकारी पार्टी की कमान में काम करने वाली किसानों-मजदूरों की खुली लोक कमेटियों ने देहातों में समान्तर सत्ता भी कायम कर ली। अब पूरे देहाती क्षेत्र में सत्ता हाथ में लेने की और शहरों में आम बगावत की तैयारी चल ही रही थी कि पेरू की क्रान्ति को एक गंभीर झटका लगा। 1992 में क्रान्ति के नेता और पार्टी के अध्यक्ष गोंजालो गिरफ्तार कर लिए गये और तानाशाह फूजीमोरी की सैनिक अदालत ने तुरत-फुरत एकतरफा मुकदमा चलाकर उन्हें एक नौसैनिक अड्डे पर भारी पहरेदारी में जीवन भर के लिए कैद कर दिया। फूजीमोरी ने दावा किया कि क्रान्ति का सिर कलम कर दिया गया है। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की भी बांछें खिल गईं। कई और शीर्ष नेता भी गिरफ्तार कर लिये गये। हजारों क्रान्तिकारियों और किसानों-मजदूरों का कत्लेआम भी किया गया। कठिन समय में कुछ लोग कमजोर भी पड़े और सत्ता से फौरी तौर पर समझौते की वकालत करने लगे।

पर लुटेरों की उम्मीदों पर जल्दी ही पानी फिर गया। क्रान्ति का सिर कुचला नहीं जा सका। जनता की अजेयता एक बार फिर साबित हुई। 1992 से लेकर अब तक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट छापामारों के हमले लगातार जारी हैं। भूमिगत पार्टी संघर्ष को नेतृत्व दे रही है और उसे आम आबादी का व्यापक समर्थन हासिल है। यही नहीं, गोंजालो की रिहाई के लिए दुनिया भर के क्रान्तिकारियों और जनतंत्र समर्थकों द्वारा जारी एकजुट मुहिम साम्राज्यवादियों और पेरू के सत्ताधारियों के लिए अलग से परेशानी का सबब बनी हुई है। भारत में जारी नई आर्थिक नीति जैसी ही नीतियों से बदहाल-परेशान लातिन अमेरिकी देशों की मेहनतकश जनता पेरू के संघर्ष से लगातार प्रेरित हो रही है। पेरू में दबाई जा रही क्रान्ति की आग पूरे महादेश में भड़क उठने के खतरे पैदा हो रहे हैं।

पेरू का संघर्ष इतिहास के उस कठिन दौर में सर्वहारा क्रान्ति के झण्डे को बुलन्द करता रहा है, जब दुनिया भर के पूंजीवादी "समाजवाद की हार" का जश्न मना रहे थे। पेरू के संघर्ष ने पूरी दुनिया के मेहनतकशों को यह संदेश दिया है कि सर्वहारा क्रान्ति की वर्तमान हार अंतिम नहीं है। अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण अवश्यंभावी हैं। पूंजीवाद न तो अमर है, न ही अजेय। उसका अंत होना ही है। पेरू की क्रान्ति का संदेश है कि भारत के मेहनतकशों को भी बेलचा-फावड़ा लेकर, एक बार फिर कमर कसकर, विश्व-पूंजीवादी तंत्र की कब्र खोदने के पुण्यकर्म में लग जाना होगा।

भगतसिंह–राजगुरु–सुखदेव की शहादत (23 मार्च) के अवसर पर

श्रमिक क्रान्ति निश्चय ही साम्राज्यवाद-पूंजीवाद का नाश करेगी और सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना करेगी

– शहीदे-आज़म भगतसिंह

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मजदूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूंजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाजारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों का तन ढंकने भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक - शोषक पूंजीपति जरा-जरा सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और जबर्दस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुंह पर बैठकर रंगरेलियां मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

सभ्यता का यह महल यदि समय रहते सम्हाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्त्तव्य है कि साम्यवादी (कम्युनिस्ट) सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जो साम्राज्यशाही के नाम से विख्यात है, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असंभव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व शांति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्वसंघ पीड़ित मानवता को पूंजीवाद के बंधनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

यह है हमारा आदर्श। और इसी आदर्श से प्रेरणा लेकर हमने एक सही तथा पुरजोर चेतावनी दी है। लेकिन अगर हमारी इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया गया और वर्तमान शासन-व्यवस्था उठती हुई जनशक्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने से बाज न आयी तो क्रान्ति के इस आदर्श की पूर्ति के लिए एक भयंकर युद्ध के फलस्वरूप सर्वहारा वर्ग के अधिनायकतंत्र की स्थापना होगी। यह अधिनायकतंत्र क्रान्ति के आदर्शों की पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा। क्रान्ति मानव जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अंतिम लक्ष्य है।

(असेम्बली में बम फेंकने के बाद, 6 जून 1929 को दिल्ली के सेशन जज मिडिल्टन की अदालत में दिये गये बयान का एक हिस्सा)

बिगुल यहां से प्राप्त करें

- शहीद पुस्तकालय, द्वारा डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ
- जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर
- विजय इन्फार्मेशन सेण्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर
- जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 7)
- ओमप्रकाश, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
- सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काजमी चैम्बर्स, 5, पार्क रोड, लखनऊ
- राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ
- अरविन्द सिंह, 123, बिड़ला छात्रावास, बी०एच०यू०, वाराणसी
- विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, बड़हलगंज, गोरखपुर–273402
- डा० डी०के० सचान, (शस्य वैज्ञानिक), A-308 आवास विकास (गंगापुर), रामपुर –244 901
- प्रो० प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर–263145
- राजेन्द्र प्रसाद, रेनु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र
- अमृतलाल पाण्डेय, निकट प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, बसखारी, जि. अम्बेडकरनगर
- एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट ऑफ फाउण्डेशन ऑफ एजुकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- शराफत, क्वार्टर नं. 324, एस.आर. के. छात्रावास, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली
- संतोष शर्मा, Q.No.-L/61K, बरौनी रेलवे कालोनी, बरौनी, बेगूसराय
- चन्द्रकेतु नारायण शर्मा, एडवोकेट, सांचीपट्टी, बागमली गाछी, स्थान–पो–हाजीपुर, जि–वैशाली
- दीपशिखा पत्रिका मंडप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय,पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, मुजफ्फरपुर
- मैत्रेयी साहित्य संगम, सर्वे आफिस के सामने, लालबाग के०डी०एस० दरभंगा–846004
- जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. कैरन जि. जलपाईगुड़ी –735205 (प. बंगाल)
- पुस्तक–पत्रिका बिक्री–वितरण केन्द्र डिल्ली बाजार चढ़ाव के पास (निकट पदम कन्या स्कूल), काठमांडू
- विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाईन, बुटवल, लुम्बनी, नेपाल
- जलजला पुस्तक सदन, धमवोजी चौक, नेपालगंज, बांके, नेपाल

जन्मदिवस (22 अप्रैल) के अवसर पर

मजदूरों के लिए आजादी और खुशहाली का रास्ता क्या है?

• लेनिन

'बिगुल' के पहले अंक में हम सोवियत क्रान्ति के महान नेता, दुनिया के पहले समाजवादी राज्य के संस्थापक और पूरी दुनिया के मेहनतकशों को मुक्ति की राह दिखाने वाले महापुरुष व्लादिमिर इल्यीच लेनिन की प्रसिद्ध पुस्तक 'गांव के गरीबों से' का एक छोटा-सा हिस्सा छाप रहे हैं। यह पुस्तिका लेनिन ने 1903 के वसंत में लिखी थी। उस समय रूस में कम्युनिस्ट आन्दोलन अभी शुरुआती दौर में था। शहरी मजदूर तेजी से, नयी-नयी बनी मजदूरों की क्रान्तिकारी पार्टी के साथ खड़े हो रहे थे और अपने आर्थिक-राजनीतिक हकों की लड़ाई लड़ रहे थे। तब लेनिन ने यह जरूरी समझा कि रूस के गांवों के गरीबों को - देहाती मेहनतकशों को भी बताया जाय कि कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं, शहर के मजदूरों के हड़तालों - संघर्षों का मकसद क्या है, गांव के मेहनतकशों की आज़ादी और खुशहाली का रास्ता क्या है, उनके दुश्मन कौन हैं और क्यों यह जरूरी है कि पूरे निजाम को बदलने के लिए वे अपने शहरी मजदूर भाइयों के कंधे से कंधा मिलाकर खड़े हों और मेहनतकशों की इंकलाबी पार्टी की रहनुमाई में समाजवादी क्रान्ति के लिए लड़ें।

पुस्तिका का जो हिस्सा यहां प्रकाशित किया जा रहा है उसमें लेनिन ने समझाया है कि पूंजीवाद सिर्फ मेहनतकशों की लूट पर ही जिन्दा रह सकता है और उसके खिलाफ लड़कर, पूरे निजाम को बदलकर एक नई समाजवादी व्यवस्था कायम करना ही मजदूर वर्ग के सामने एकमात्र रास्ता है। कम्युनिस्ट यही चाहते हैं। आज, लगभग 93 वर्षों बाद भी पूंजीवादी लूट, समाजवादी क्रान्ति और कम्युनिस्टों के लक्ष्य के बारे में लेनिन द्वारा कही गयी ये बातें सही हैं। परिस्थितियों में कुछ बदलाव जरूर आये हैं और उस हिसाब से मजदूर क्रान्ति के रूप-रास्ते में भी कुछ बदलाव जरूर आयेंगे। पर मूल बातें आज भी सही हैं।

पूरी दुनिया में और हमारे देश में आज पूंजीवाद की बढ़ती लूट और जुल्म के अंधेरे में एक बार फिर समाजवाद और मजदूर इंकलाब की आंधी उमड़ने वाली है। नये सिरे से, अपनी इंकलाबी पार्टी बनाकर नई सर्वहारा समाजवादी क्रान्ति की दिशा में कदम बढ़ाने के लिए हमें इतिहास के अनुभवों और क्रान्तिकारी साहित्य को एकबार फिर से गंभीरता से पढ़ना होगा और सोचना होगा। इस नजरिए से हम लेनिन की रचना का यह हिस्सा छाप रहे हैं। इस पर पाठक साथी अपनी राय और प्रतिक्रिया हमें अवश्य भेजें।

एक बात और। इस लेख में कम्युनिस्ट के लिए 'सामाजिक जनवादी' शब्दों का प्रयोग किया गया है। उस समय कम्युनिस्टों के लिए यही शब्द प्रचलित था। बाद में जर्मनी के सामाजिक जनवादी नेता कार्ल काउत्स्की और यूरोप के अधिकांश सामाजिक जनवादियों ने पहले महायुद्ध के दौरान जब मजदूर क्रान्ति की राह छोड़कर सुधार और पैबंदबाजी का मध्यमवर्गीय रास्ता पकड़ लिया तो 'सामाजिक जनवादी' शब्द सुधारवादियों और मध्यमवर्गीय "समाजवादी" नजरिए वालों के लिए इस्तेमाल किया जाने लगा और सच्चे, क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के लिए गाली बन गया। - संपादक

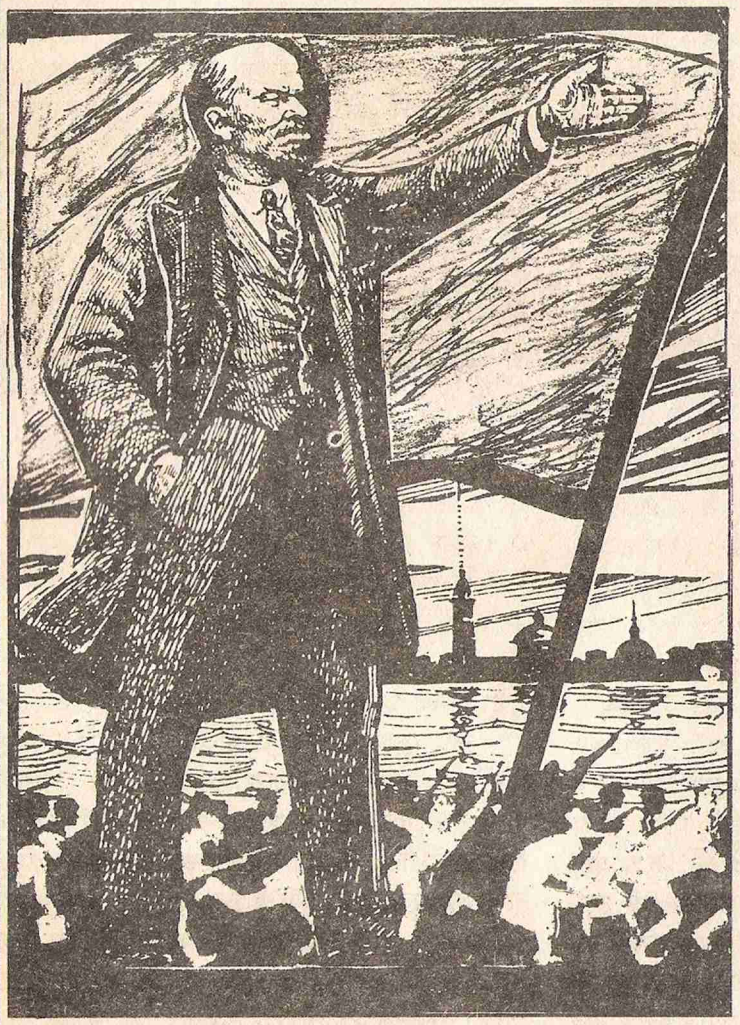

जिन मजदूरों के पास अपनी जमीन और दुकान नहीं है, जो सारी जिन्दगी उजरत के लिए, औरों के लिए काम करते हैं, उन्हें सारे यूरोप में सर्वहारा (प्रोलेतारिया) कहा जाता है। पचास साल से अधिक हुए, जब मजदूर जनता के एक होने की आवाज उठाई गई थी : **"दुनिया के मजदूरो एक हो!"** (यह नारा मार्क्स और एंगेल्स ने 1848 में लिखित वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के पहले और अमर कार्यक्रम-दस्तावेज़ **'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'** में दिया था। -संपादक)। पिछले पचास साल से इन शब्दों की गूंज सारी दुनिया में सुनाई दे रही है। उन्हें दुनिया की प्रत्येक भाषा में सामाजिक जनवादियों की करोड़ों पुस्तकों और पत्रों में पढ़ा जा सकता है।

बेशक करोड़ों मजदूरों को एक संघ में, एक पार्टी के भीतर जत्थाबंद करना आसान नहीं है। इसके लिए समय, दृढ़ता, लगन और हिम्मत चाहिए। मजदूर गरीबी से पिसे हैं, पूंजीपतियों और जमींदारों के लिए दिन-रात मरने-खपने के कारण वे सुन्न हो गये हैं। अक्सर उनके पास यह सोचने तक को समय नहीं है कि वे क्यों सदा कंगाल बने रहते हैं अथवा कैसे वे इस दशा से छुटकारा पा सकते हैं। मजदूरों को एकजुट होने से रोकने के लिए हर तरह की कोशिशें की जाती हैं : या तो रूस की तरह, जहां राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है, सीधे और पाशविक अत्याचार के द्वारा, या समाजवादी सिद्धान्त का प्रचार करने वाले मजदूरों को काम पर न रखकर या, अंत में, मजदूरों को धोखा और रिश्वतें देकर। किंतु कोई दमन, कोई जुल्म सर्वहारा मजदूरों को सारी मजदूर जनता की गरीबी और अत्याचार से मुक्ति के महान ध्येय के लिए लड़ाई करने से नहीं रोक सकता। ....

....सामाजिक जनवादी मजदूर किस तरीके से जनता को गरीबी से छुड़ाना चाहते हैं?

इसको जानने के लिए यह साफ तौर पर समझना होगा कि आजकल की सामाजिक व्यवस्था में विशाल जन-समुदायों की गरीबी का कारण क्या है। एक ओर, धनी शहर बढ़ते चले जा रहे हैं, उद्योग और खेती में तरह-तरह की नई मशीनों और सुधारों का उपयोग हो रहा है। दूसरी तरफ, करोड़ों लोग गरीबी की हालत में रहते हैं, अपने बाल-बच्चों के लिए मुश्किल से दो जून की रोटी जुटाने के लिए वे जिंदगी भर काम करते हैं। इतना ही नहीं, अधिकाधिक लोग बेकार होते जा रहे हैं। शहर और देहात, दोनों में ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है जिन्हें काम बिलकुल ही नहीं मिलता। वे गांवों में भूखे रहते हैं, शहरों में आवारों में शामिल हो जाते हैं और जानवरों की तरह शहर के बाहर खंदकों में या मास्को (रूस की राजधानी -संपादक) के खिस्त्रोव बाज़ार की जैसी गंदी गलियों और तहखानों में ठुसे रहते हैं।

यह क्यों? एक तरफ धन और ऐशो-आराम बराबर बढ़ते जा रहे हैं और दूसरी तरफ, करोड़ों-करोड़ आदमी जो अपनी मेहनत से उस सारे धन को पैदा करते हैं, निर्धन और बेघरबार बने रहते हैं। किसान भूखों मरते हैं, मजदूर बेकार हो इधर-उधर भटकते हैं, जबकि व्यापारी करोड़ों पूद (एक पूद 16 किलोग्राम के बराबर होता है -सं.) अनाज रूस से बाहर दूसरे देशों में भेजते हैं और कारखाने तथा फैक्टरियां इसलिए बंद कर दी जाती हैं कि माल बेचा नहीं जा सकता, उसके लिए बाजार नहीं है।

इसका कारण सबसे पहले यह है कि अधिकतर ज़मीन, सभी कल-कारखाने, वर्कशॉप, मशीनें, मकान, जहाज़, इत्यादि थोड़े से धनी आदमियों की मिल्कियत हैं। करोड़ों आदमी इस ज़मीन, इन कारखानों और वर्कशॉपों में काम करते हैं, लेकिन ये सब कुछ हजार या दसियों हजार धनी लोगों - जमींदारों, व्यापारियों और मिल मालिकों के हाथ में हैं। ये करोड़ों लोग इन धनी आदमियों के लिए मजूरी पर, उजरत पर, रोटी के एक टुकड़े के वास्ते काम करते हैं। जीने भर के लिए जितना ज़रूरी है, उतना ही मजदूरों को मिलता है। उससे अधिक जितना पैदा होता है वह धनी मालिकों के पास जाता है। वह उनका नफ़ा, उनकी "आमदनी" है। काम के तरीकों में सुधार से और मशीनों के इस्तेमाल से जो कुछ फायदा होता है, वह जमींदारों और पूंजीपतियों की जेबों में चला जाता है : वे बेशुमार धन जमा करते हैं और मजदूरों को चन्द टुकड़ों के सिवाय कुछ नहीं मिलता। काम करने के लिए मजदूरों को एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है : एक बड़े फार्म या बड़े कारखाने में कितने ही हजार मजदूर एक साथ काम करते हैं। जब इस तरह से मजदूर इकट्ठा कर दिये जाते हैं और जब विभिन्न प्रकार की मशीनें इस्तेमाल की जाती हैं, तब काम अधिक उत्पादनशील होता है : बिना मशीनों के, अलग-अलग काम करके बहुत से मजदूर जितना पहले पैदा करते थे, उससे कहीं अधिक आजकल एक अकेला मजदूर पैदा करने लगा है।

(पेज 6 पर जारी)

"यदि क्रांन्ति करनी हो, तो उसके लिए एक क्रान्तिकारी पार्टी का होना अनिवार्य है। एक क्रान्तिकारी पार्टी के बिना, एक ऐसी पार्टी के बिना, जिसका निर्माण मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी सिद्धान्त के आधार पर और मार्क्सवादी-लेनिनवादी क्रान्तिकारी शैली में हुआ हो, साम्राज्यवाद और उसके पालतू कुत्तों को पराजित करने के लिए मजदूर वर्ग और व्यापक जनता का नेतृत्व करना असम्भव है।"

•

"क्रान्तिकारी सिद्धान्त को आत्मसात किये बिना, इतिहास का ज्ञान प्राप्त किये बिना और वास्तविक आन्दोलन की गहरी समझ हासिल किये बिना किसी भी राजनीतिक पार्टी के लिए एक महान क्रान्तिकारी आंदोलन को विजय तक ले जाना असंभव है।"

•

"समाजवादी व्यवस्था अन्त में पूंजीवादी व्यवस्था की जगह ले लेगी; यह मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र एक वस्तुगत नियम है। इतिहास के चक्र को रोकने की प्रतिक्रियावादी चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, देर-सबेर क्रान्ति होकर रहेगी और अनिवार्य रूप से विजय प्राप्त करेगी।"

- चीनी क्रान्ति और मजदूर वर्ग के महान नेता माओ त्से-तुङ

एक नये क्रान्तिकारी मज

(पेज 1 से आगे)

हम एक ऐतिहासिक तूफानी दौर की चौखट पर खड़े हैं!

(1966-1976) के दौरान माओ त्से-तुङ ने कहा था, *"अब से लेकर अगले पचास से सौ वर्षों तक का युग एक ऐसा महान युग होगा जिसमें दुनिया की सामाजिक व्यवस्था बुनियादी तौर पर बदल जायेगी। वह एक ऐसा भूकम्पकारी युग होगा जिसकी तुलना इतिहास के पिछले किसी भी युग से नहीं की जा सकेगी। एक ऐसे युग में रहते हुए, हमें उन महान संघर्षों में जूझने के लिए तैयार रहना चाहिए जो अपनी विशिष्ट चिन्ताओं में अतीत के तमाम संघर्षों से कई मायने में भिन्न होंगे।"*

पूरी दुनिया और अपने देश के हालात को अच्छी तरह देखने-परखने के बाद, हमारा मानना है कि **हम एक उथल-पुथल भरे, जबर्दस्त आंधियों-तूफानों से भरे क्रान्तिकारी बदलाव के ऐतिहासिक दौर की दहलीज पर खड़े हैं। यह तूफान के पहले की शांति है, घुटन और उमस से भरी हुई। यह टूटने ही वाली है। हम जिस नये ऐतिहासिक संक्रान्ति काल में प्रवेश करने वाले हैं, उसकी पूरे मन से, पूरी ताकत से, पूरी लगन से तैयारी जरूरी है। क्रान्तिकारी संकट के भावी समय में मेहनतकश अवाम के असंतोष और गुस्से के विस्फोट थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से लगातार होते रहेंगे। यदि सर्वहारा वर्ग का हिरावल दस्ता - उसकी क्रान्तिकारी पार्टी गठित हो जायेगी, मजबूत हो जायेगी और तैयार रहेगी, यदि मजदूर वर्ग और व्यापक मेहनतकश अवाम के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार, संगठन और आन्दोलन का काम करते हुए वह खुद को और आम मेहनतकश आबादी को चाक-चौबन्द रखेगी; तभी आगे क्रान्तिकारी संकट के किसी विस्फोट को क्रान्ति में बदला जा सकेगा या फिर योजनाबद्ध व्यवस्थित तैयारी के बाद वर्तमान पूंजीवादी निजाम का क्रान्ति के द्वारा नाश किया जा सकेगा।** यदि ऐसा नहीं हुआ तो *"ऐतिहासिक मोड़ हमें बिना तैयारी की हालत में आ दबोचेंगे"* और हम चूक जायेंगे।

हालांकि आज लेनिन और माओ के देश में भी सर्वहारा वर्ग की सत्ता कायम नहीं है और पूंजीवाद फिर से बहाल हो गया है। पर **यह क्रान्ति की अंतिम हार नहीं है।** इतिहास में पहले भी ऐसा हुआ है कि पुराने वर्ग पर फैसलाकुन जीत से पहले नया वर्ग कई बार हारा है। मजदूर वर्ग की लड़ाई तो वैसे भी काफी कठिन है क्योंकि उसे चार हजार वर्षों से भी अधिक पुरानी निजी सम्पत्ति की व्यवस्था की हर निशानी को मिटाकर, समाजवादी बदलाव के लम्बे रास्ते से होकर वर्गविहीन, शोषणमुक्त समाज तक जाना है।

हालात बताते हैं साम्राज्यवाद और पूंजीवाद को आखिरी तौर पर कब्र में सुलाने वाली नई समाजवादी क्रान्तियों का जन्म होना ही है। फिलहाल वे संकटपूर्ण हालात के कोख में पल-बढ़ रही हैं। अमेरिका और यूरोप के धनी देशों तक में पूंजीवाद की बीमारियां लाइलाज हो चुकी हैं, भारत और एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के गरीब और पिछड़े पूंजीवादी देशों की तो बात ही क्या है!

विश्व पूंजीवाद को इसकी लाइलाज बीमारियों से सिर्फ मौत ही निजात दिला सकती है!

बात न सिर्फ इतनी है कि पूंजीवाद का अब तक का इतिहास गरीबों-मजलूमों, किसानों-मजदूरों की लूट और तबाही का, विनाश और बर्बादी का, मारकाट और युद्धों का सिलसिलेवार लेखाजोखा है। बात न सिर्फ इतनी है कि पूंजीवादी विकास की गाड़ी बिना धनी-गरीब की खाई को ज्यादा से ज्यादा बढ़ाये, बिना मेहनतकशों को निचोड़े, और बिना लुटेरे पूंजीपतियों की गलाकाटू आपसी होड़ और युद्ध के आगे बढ़ ही नहीं सकती। पूंजीवाद के रास्ते खुशहाली का अर्थ ही है, कमेरों की भारी आबादी की लूट और बदहाली की कीमत पर मुट्ठी भर लुटेरों की खुशहाली। इन सच्चाइयों को तो पूंजीवाद के लगभग दो सौ वर्षों के इतिहास ने सिद्ध कर ही दिया है। बीसवीं सदी पूंजीवाद के विकास की चरम अवस्था की सदी - साम्राज्यवाद की सदी रही है जिसने अब यह सिद्ध कर दिया है कि विश्व पूंजीवाद अब इंसानियत को कुछ भी अच्छा नहीं दे सकता, और यह भी कि, यह अपने खुद के संकटों से लाख कोशिशों के बावजूद मुक्ति नहीं पा सकता, थोड़ी देर के लिए राहत भले ही पा ले।

पूंजीपति और पूंजीवादी भूस्वामी अपने कारखानों और फार्मों में चीजें इसलिए नहीं पैदा करते कि समाज उनका उपयोग करे। वे चीजें मुनाफा कमाने के लिए, बेचने के लिए, बाजार के लिए पैदा करते हैं। उनका एक ही मंत्र है - 'सस्ता से सस्ता खरीदो, महंगा से महंगा बेचो।' उनकी एकमात्र चिन्ता यह होती है कि उनकी पूंजी किस तरह लगातार बढ़ती रहे। वे कच्चा माल और मजदूरों का श्रम सस्ता से सस्ता खरीदते हैं। मजदूर मजबूर होते हैं क्योंकि कारखानों और उत्पादन के सभी साधनों के मालिक पूंजीपति ही होते हैं और राज्यसत्ता भी उन्हीं के प्रतिनिधियों के हाथों में होती है। पूंजीपति मजदूर को सिर्फ उतना ही देते हैं जितने में वे अपना पेट पालकर उनके लिए काम करते रह सकें। माल की बिक्री से मिला शेष सारा रुपया वे हड़प जाते हैं। लगातार नई-नई मशीनें लाकर वे मजदूरों से कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करवाते हैं और उनकी मेहनत का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा लूटते हैं। नई मशीनें आने पर फाजिल हो गये मजदूरों को वे सड़कों पर धकेल देते हैं। फिर भी एक मंजिल यह आती है कि वे इतना पैदा कर देते हैं कि चीजों के खरीदार नहीं रह जाते। पूंजीवादी उत्पादन ज्यादा चीजें पैदा करने के साथ ही जनता को ज्यादा से ज्यादा निचोड़कर उसकी आमदनी पर सीमा भी बांधता चलता है और वह उसके द्वारा तय कीमतों पर चीजें नहीं खरीद पाती। और पूंजीपति दाम नीचे कर नहीं सकता क्योंकि वह कुछ भी कर सकता है पर अपना मुनाफा नहीं छोड़ सकता। भले ही इसके लिए उसे अनाज जलाना और समुद्र में फेंकना पड़े या उत्पादन ही रोकना पड़े।

इस तरह बाजार में मन्दी आ जाती है। इस स्थिति से बचने के लिए पूंजीपति लुटेरों ने अपने लूट का तंत्र पूरी दुनिया में फैला दिया। पहले एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों को हथियारों के जोर पर गुलाम बनाकर वे पहले से ही लूट रहे थे। बीसवीं सदी में यह लूट और गहरी और व्यापक हो गई। यह एकाधिकारी पूंजी के दुनिया भर में फैलाव और कूपन काटकर लूटने का नया साम्राज्यवादी युग था। फिर उपनिवेशों की जनता की आजादी की लड़ाई के नतीजे के तौर पर साम्राज्यवादी लुटेरे गुलाम देशों को राजनीतिक आजादी देने के लिए मजबूर हो गये। पर जिन पिछड़े देशों को राजनीतिक आजादी मिली उनमें से ज्यादातर देशों में हुकूमत देशी पूंजीपतियों के हाथों में ही आई। अब उन्होंने अपने देश की जनता को लूटना शुरू किया। साथ ही, उन्होंने साम्राज्यवादियों की पूंजी भी देश में लगी रहने दी और उन्हें भी लूटने का मौका दिया। बल्कि नये-नये उद्योगों में भी विदेशी पूंजी को वें न्यौता देते रहे। कारण कि नई मशीनों और मशीनी हुनर के लिए तथा पूंजी के लिए वे अमीर देशों के पूंजीपतियों पर आश्रित थे। नतीजतन, साम्राज्यवादियों से थोड़ी बहुत आजादी लेकर कुछ दिनों तक पूंजीवादी विकास के रास्ते पर चलने के बाद गरीब देशों के पूंजीपति शासकों ने आखिरकार विदेशी पूंजी के लिए देश के दरवाजों को पूरी तरह खोल दिया। यह उनकी मजबूरी भी थी और जरूरत भी। साम्राज्यवादी देशों का इसके लिए दबाव भी था क्योंकि वे इतिहास की सबसे गंभीर मंदी के शिकार थे ओर नये-नये बाजार की तलाश के लिए बेताब थे।

मगर लगाने के लिए उनके पास पूंजी का अम्बार इतना अधिक था कि एशिया, अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में इसके खपने की गुंजाइश ही नहीं थी। साम्राज्यवादी देश गरीब देशों के मेहनतकशों का श्रम और इनका कच्चा माल मिट्टी के मोल तो खरीद सकते थे (और खरीद ही रहे हैं) पर सदियों की लूट से तबाह इन देशों में उनके मालों के लिए बाजार एक हद तक ही बन सकता था। नतीजतन यह समस्या फिर भी बनी रहती कि पूंजी के अम्बार को कहां लगायें। इसी समस्या को हल करने का एक नया रास्ता पूंजीपतियों ने इधर यह निकाला है कि बड़े पैमाने पर उन्होंने सट्टाबाजार, विज्ञापन, बीमा, जमीन-जायदाद आदि में पूंजी लगाई है जहां वास्तव में किसी चीज का उत्पादन नहीं होता पर पूंजी ऐसे बढ़ती है जैसे हवा से फूलता गुब्बारा। आज पूरी दुनिया के पैमाने पर दूसरे देशों में यदि 70 डालर पूंजी लग रही है तो उसमें से सिर्फ एक डालर वास्तविक उत्पादन में लग रहा है।

दुनिया के मेहनतकशों की लूट में साम्राज्यवादियों के छोटे साझीदार - गरीब देशों के शासक पूंजीपति

यह है आज पूरी दुनिया के पैमाने पर पूंजीवाद का चेहरा। यह है उसका अति परजीवी चरित्र! पिछले बीस वर्षों के दौरान पूरी दुनिया के पैमाने पर पूंजी ने पहले हमेशा के मुकाबले तेज रफ्तार से दौड़ते हुए, देशों की सीमाओं को लांघते हुए एक भूमण्डलीय बाजार का, पहले हमेशा से अधिक एकीकृत विश्व बाजार का निर्माण किया है। बुनियादी जरूरत की चीजों के उत्पादन पर पूरी दुनिया के पैमाने पर मुट्ठीभर दैत्याकार एकाधिकारी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कब्जा है। इसके अलावा सबसे बड़ी इजारेदार कम्पनियां और पूंजी का बड़ा हिस्सा बीमा, विज्ञापन, बैंक, रेडियो-टी.वी. आदि-आदि में लगा हुआ है। फिर भी दुनिया भर के साम्राज्यवादी डाकुओं का संकट यह है कि वे अपनी पूंजी का अम्बार कहां लगायें! जब वे पूंजी कहीं लगाते हैं तो अतिलाभ निचोड़ते हैं और नतीजतन पूंजी का अम्बार और बढ़ जाता है। समाधान की हर कोशिश लौटकर संकट को और गहरा कर जाती है। साम्राज्यवादी लुटेरे पूरी दुनिया के बाजार की बंदरबांट के लिए कुत्तों की तरह लड़ रहे हैं।

भारत और ऐसे तमाम गरीब देशों के पूंजीपतियों ने आज देश की अर्थव्यवस्था के दरवाजों को साम्राज्यवादी लुटेरों के लिए पूरी तरह खोल दिया है। विदेशी लुटेरों और देशी लुटेरों ने अपनी-अपनी मजबूरियों और जरूरतों के चलते आपस में गांठ जोड़ ली है। मुनाफे के बंटवारे के लिए वे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, खींचा-तानी करते हैं पर आम मेहनतकश आबादी के खिलाफ वे पूरी तरह एक हैं।

साम्राज्यवादियों के साथ आज लुटेरी जमात में टाटा-बिड़ला-अम्बानी जैसे बड़े पूंजीपतियों से लेकर छोटे पूंजीपति तक शामिल हैं। साथ ही धनी किसान, पूंजीवादी भूस्वामी, फार्मर आदि भी इनके छोटे हिस्सेदार हैं। बड़े व्यापारी-ठेकेदार-अफसर-नेता आदि तथा मध्यम वर्ग के खुशहाल तबके भी इन्हीं लुटेरों के लग्गू-भग्गू हैं, इन्हीं के टुकड़खोर और मजदूरों, छोटे व गरीब किसानों तथा आम मध्यम वर्ग के लोगों के दुश्मन हैं।

सभी चुनावबाज पूंजीवादी पार्टियां इन्हीं लुटेरों के अलग-अलग हिस्सों की, और कुल मिलाकर इस पूरी लुटेरी जमात की सेवा करती हैं। चुनावबाज वामपंथी दल भी इन्हीं लुटेरों के निजाम की हिफाजत में तैनात हैं और इन्हें फिलहाल आम मेहनतकश आबादी को चुनावी राजनीति के दायरे में कैद रखने तथा सिर्फ दुअन्नी-चवन्नी के लिए लड़ने की भूल-भूलैया में फंसाये रखने के लिए तैनात किया गया हैं

नई आर्थिक नीति का खूनी चेहरा

पिछले चार वर्षों से नरसिंह राव की सरकार साम्राज्यवादी सूदखोरों-लुटेरों और विश्व बैंक-अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष जैसी उनकी एजेन्सियों द्वारा सुझाये गये नुस्खों के आधार पर नई आर्थिक नीतियों को लागू कर रही है। वह दावा कर रही है कि इन नीतियों के अमल से देश खुशहाली के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। नकली समाजवाद के नेहरू के जमाने वाले झण्डे को उतारकर खुले पूंजीवाद का झण्डा लहरा दिया गया है। सरकारी कल-कारखाने, सड़क, रेल, डाक-तार आदि को धीरे-धीरे देशी पूंजीपतियों और विदेशी कम्पनियों को सौंपा जाने लगा है। सरकार दावा कर रही है कि संकट अब लगभग दूर हो चुका है और खुशहाली का दौर शुरू हो रहा है।

जरा इस खुशहाली के दौर की बानगी तो देखिए! उद्योगों के नवीनीकरण के नाम पर पिछले चार वर्षों में हर वर्ष लगभग 40-50 लाख मजदूरों का रोजगार छिना है। नई भर्तियां बंद हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और बड़े एकाधिकारी घरानों के अजगरी

एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत

दूर अखबार की जरूरत

शिकंजे में अब तक करीब चार लाख छोटे और घरेलू उद्योग-धंधे तबाह हो चुके हैं। साथ ही, बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, अहमदाबाद आदि पुराने औद्योगिक शहरों के जूट, कपड़ा आदि के कारखानों और पुरानी चीनी मिलों पर ताले लटक चुके हैं। बेरोजगारों की संख्या पूरे देश में 20 करोड़ के आसपास जा पहुंची है जो इस सदी के अंत तक दूनी हो जायेगी। छोटे और मंझोले किसान पूंजी की मार से तबाह अपनी जगह-जमीन से और तेजी से उजड़ते जा रहे हैं और उनकी एक भारी आबादी जानवरों सी जिन्दगी बसर करके भी पेट पालने के लिए शहरों की ओर भाग रही है।

देशी-विदेशी लुटेरे जो नये उद्योग लगा रहे हैं, उनमें ज्यादातर काम कैजुअल, टेम्परेरी मजदूरों से या ठेके पर काम करा रहे हैं। स्थायी नौकरियां नाममात्र की होती हैं। इस तरह पहले ये डाकू बेकारों की भीड़ खड़ी कर रहे हैं और फिर उनकी मेहनत मिट्टी के मोल खरीदकर अपनी तिजोरियां भर रहे हैं।

यह सरकार जब बनी थी तो देश पर 11 खरब रुपये का विदेशी कर्ज था जो अब बढ़कर 40 खरब रुपये हो गया है। देश का हर व्यक्ति विदेशी कर्ज के ब्याज और मूल की किश्तों के रूप में सात सौ रुपये का भुगतान करता है। देश के बजट का चालीस फीसदी हिस्सा विदेशी कर्ज की किश्तें और ब्याज चुकाने में ही चला जाता है।

पर नरसिंह राव भी सही ही कह रहे हैं। खुशहाली आई है। अब यह बात दीगर है कि वह सिर्फ ऊपर के बीस फीसदी लोगों के लिए आई है। और नीचे की तथा बीच की अस्सी फीसदी आबादी की तबाही-बर्बादी की कीमत पर आई है। दुनिया की ज्यादातर मंहगी कारें, तरह-तरह की मोटरसाइकिलें और स्कूटर, फ्रिज-एयरकण्डीशनर, रंगीन टी.वी., कपड़े धोने-झाड़ू लगाने की मशीनें, पेप्सी, कोक और डिब्बाबंद खाने की मंहगी चीजों वगैरह से बाजार पट चुके हैं। मेहनतकशों के भारत और चोट्टों के भारत के बीच का बंटवारा पहले कभी भी इतना साफ नहीं था। तबाही-बर्बादी के समन्दर में ऐयाशी और विलासिता की इतनी ऊंची-ऊंची मीनारें पहले कभी नहीं थीं।

यह नई समाजवादी क्रान्ति की तैयारी का दौर है!

वैसे कहने को तो सभी गैर-कांग्रेस विरोधी चुनावी पार्टियां नरसिंह राव सरकार की नई आर्थिक नीति का विरोध करती हैं, पर उनका विरोध एकदम फर्जी है, सिर्फ जनता से वोट लेने के लिए है। जिन राज्यों में जनता दल, भाजपा, वामपंथी दलों, सपा-बसपा आदि की सरकारें रही हैं और आज भी हैं वे सबकी सब निजीकरण और विदेशी कम्पनियों को लूट की खुली छूट की नीति लागू करने में केन्द्र की सरकार से एक कदम भी पीछे नहीं रही हैं। इन सभी पार्टियों का भाण्डा तो भारतीय पूंजीपतियों के संगठन सी.आई.आई. के अध्यक्ष राजीव कौल ने पिछले दिनों खुद ही यह कहकर फोड़ दिया कि चुनाव में चाहे कोई भी दल जीते, आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया जारी रहेगी। (जनसत्ता : 5 मार्च '96, नई दिल्ली)

कम से कम इस मामले में हम भी पूंजीपतियों के इस सरगना के विचारों से सहमत हैं कि अब भारतीय पूंजीवाद इस राह को उलट या बदल नहीं सकता। लेकिन इसमें हम यह भी जोड़ देना चाहते हैं कि यह राह इतिहास के उस कब्रिस्तान तक जाती है जहां अतीत के सभी शासक वर्ग और जालिम व्यवस्थाएं दफन हैं। और यह भी कि **अब इस सफर की मंजिल बहुत दूर नहीं है।**

राज-काज, समाज और उत्पादन की कोई भी व्यवस्था आज तक अमर नहीं रही है। लूट और दमन का कोई भी तंत्र हमेशा के लिए कायम नहीं रहा। पूंजीवाद भी अमर नहीं है - न तो पूरी दुनिया के पैमाने पर, न ही हमारे देश में। यह जोरो-जुल्म, इतनी तबाही जनता हमेशा के लिए बर्दाश्त नहीं कर सकती। चोरों-लुटेरों का शासन जारी नहीं रह सकता। सिर्फ गत पांच वर्षों के कांग्रेसी शासन के दौरान लगभग 9 खरब रुपये के घोटाले हुए हैं। जो नेता और अफसर पूंजीपति डाकू-लुटेरों के राजनीतिक नुमाइन्दे हैं, वे खुद भी चोरी-पाकेटमारी भला क्यों न करें? अब कुछ मुकदमे चलाकर और कुछ प्यादे पिटवाकर इस व्यवस्था के दामन को साफ दिखलाने की चाहे जितनी भी कोशिश की जाये, असलियत दिन के उजाले के मानिन्द साफ है।

साम्राज्यवाद का यह नया दौर आर्थिक नव-उपनिवेशवाद का दौर है। यह विश्व पूंजीवाद के असाध्य, ढांचागत और अंतकालिक रोगों-बीमारियों का दौर है। यह मजदूर क्रान्तियों के अधिक उन्नत, अधिक सबल और अधिक संभावना संपन्न रूपों के पैदा होने का दौर है। यह भारत और ऐसे तमाम पिछड़े देशों में, जो विश्व पूंजीवादी तंत्र की कमजोर कड़ियां हैं, साम्राज्यवाद और देशी पूंजीवाद विरोधी नई क्रान्तियों का दौर है। यह नई समाजवादी क्रान्तियों का दौर है। एकदम फौरी तौर पर, यह इन नई क्रान्तियों की तैयारी का समय है। एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन का समय है।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के बिना क्रान्ति असम्भव है!

इतिहास गवाह है कोई भी सामाजिक व्यवस्था चाहे जितनी भी जर्जर हो, वह तबतक समाप्त नहीं होती जबतक समाज की विकासमान शक्तियां संगठित होकर उसे नष्ट करके नई व्यवस्था का निर्माण नहीं करती। पूंजीवाद का नाश करके निजी सम्पत्ति की पूरी व्यवस्था को समाप्त करने का सिलसिला शुरू करने का ऐतिहासिक मिशन दुनिया भर के मजदूर वर्ग का ही है। यह अटल सत्य है।

भारत में भी नई क्रान्ति की अगुवाई यहां का मजदूर वर्ग ही करेगा - सबसे आगे औद्योगिक सर्वहारा वर्ग की कतारें और फिर ग्रामीण सर्वहारा वर्ग की कतारें। सर्वहारा वर्ग ही पूरी आम मेहनतकश आबादी - मध्यम एवं गरीब किसानों तथा सभी तबाहहाल मध्यम वर्गों को पूंजी के जूए से मुक्ति के संघर्ष में नेतृत्व देगा।

पर इतिहास का एक जरूरी सबक यह भी है कि पूरे देश स्तर पर, वैज्ञानिक समाजवादी विचारधारा के आधार पर - आज के सन्दर्भों में **मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन** और **माओ** के विचारों के आधार पर और क्रान्ति के एक सही कार्यक्रम के आधार पर, **एक क्रान्तिकारी पार्टी संगठित किये बिना सर्वहारा वर्ग क्रान्ति सम्पन्न नहीं कर सकता, उसकी अगुवाई नहीं कर सकता।**

भारत के मजदूर वर्ग के सामने आज यह सबसे जरूरी, सबसे पहला काम है। उसे सोचना है कि **मजदूर वर्ग की अखिल भारतीय स्तर की क्रान्तिकारी पार्टी - एक सच्चे बोल्शेविक ढंग की पार्टी कैसे गठित हो?**

हमारी समझ है कि ठहराव को तोड़कर सच्चे अर्थों में, सिद्धान्त और व्यवहार में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट ग्रुपों को एकजुट करने के लिए और नये सिरे से इंकलाबी पार्टी बनाने की कोशिशों को तेज करने के लिए मजदूर वर्ग के एक नये, इंकलाबी अखबार की जरूरत है। **'बिगुल'** का प्रकाशन इसी जरूरत और जिम्मेदारी के अहसास से शुरू किया गया है।

क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने के लिए एक क्रान्तिकारी राजनीतिक अखबार जरूरी है

इधर एक लम्बे समय से देखने में यह आ रहा है कि देश के क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के छोटे-छोटे ग्रुप सिर्फ क्रान्तिकारी प्रचार और आम आह्वान की कार्रवाइयों तक ही सिमट गये हैं। विचारधारा और क्रान्ति के कार्यक्रम आदि पर उनका तमाम साहित्य कार्यकर्ताओं तक और मध्यमवर्ग के क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों तक ही पहुंच पाता है। संतुलन कायम करने के लिए वे किसानों या मजदूरों के संगठन या यूनियन बनाते हैं और कुछ रस्मी कार्रवाइयों - रुटीन आंदोलनों तक सीमित रह जाते हैं। व्यावहारिक ठोस काम के नाम पर, अलग यूनियनें खड़ी करके भी कुछ क्रान्तिकारी वास्तव में थोड़ा अधिक रैडिकल या गरम किस्म का अर्थवाद ही करते हैं। भांति-भांति के अर्थवादियों और ट्रेडयूनियनवादियों से ऊबा हुआ मजदूर वर्ग उन्हें एक क्रान्तिकारी विकल्प के रूप में कतई नहीं देख पाता। दूसरी ओर, कुछ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट अभी भी बुनियादी वर्गों के व्यापक जन संगठन बनाने के बजाय अति वामपंथी दुस्साहसवादी लाइन लागू कर रहे हैं।

हम समझते हैं कि व्यावहारिक ठोस कामों के नाम पर सिर्फ आर्थिक मांगों तक सीमित रहना, या फिर इन्हें एकदम ही छोड़ देना दोनों गलत है। मजदूर वर्ग को आर्थिक मांगों के साथ ही उसके राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ने की शिक्षा देनी होगी तथा साथ ही उनके बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई को तेज करना होगा। इस तरह विभिन्न कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी ग्रुपों की सोच प्रयोगों में उतरेगी, उनके बीच का ठहराव टूटेगा और आपसी बहस-विचार को नई गति मिलेगी।

हम 'बिगुल' को इसका एक साधन बनाना चाहते हैं। हम इसके माध्यम से सभी सर्वहारा क्रान्तिकारियों को भारतीय क्रान्ति की समस्याओं पर खुली बहस का न्यौता देते हैं। यह अच्छा रहेगा। इससे मेहनतकश आबादी की राजनीतिक शिक्षा का काम भी तेज होगा और भविष्य में बनने वाली क्रान्तिकारी पार्टी का उनमें व्यापक आधार तैयार होगा।

'बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियां

(1) 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

(2) 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

(3) 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को यह नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

(4) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

(5) 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

इन संकल्पों के साथ हम यह एक शुरुआत कर रहे हैं जैसे कि सैकड़ों मील लम्बी यात्रा की शुरुआत भी एक छोटे से कदम से ही होती है।

एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत एक नये क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की जरूरत

नारी सभा

"रुको, ठहरो और सुनो
हमारी शक्ति की आवाज़
हृदय की मौन पुकार,
हम सक्षम हैं, सक्षम हैं, सक्षम हैं।
कोटि-कोटि हाथों की ताकत में
जोड़ दो अपनी ताकत
आने दो ज्वार बदलाव का
बढ़ती चलो, आगे
नये वक्त, नयी जगह
अपने ही बनाये नये युग की ओर।
खिलने दो क्रोध के फूल
बिखरने दो अंगारे
कुचल दो सख्ती से उस अन्याय को
भोगती आयी हैं जिसे सब औरतें
और दलित वर्ग सारे।"

जो रोज दहेज के लिए जलाई जा रही हैं
वे भी औरतें हैं।
हमारी जैसी, तुम्हारी जैसी।
बहनो ! सोचो !!
क्या जला दिये जाने से बेहतर नहीं है
पुराने रीति-रिवाजों को, सड़ी-गली
परम्पराओं को
और इस मानवद्रोही समाज-व्यवस्था को
जलाकर राख कर देना।
और यह तुम कर सकती हो
यदि तुम एकजुट हो जाओ।
बहनो ! सोचो !!
और आगे कदम बढ़ाओ।
यात्रा कठिन है। सफलता दूर है।
लेकिन असम्भव नहीं।

(पेज 3 से जारी)

लेकिन काम के अधिक उत्पादनशील होने का फल सभी मेहनतकशों को नहीं मिलता, वह मुट्ठी भर बड़े-बड़े जमींदारों, व्यापारियों और मिल मालिकों की जेबों में पहुंच जाता है।

अकसर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि जमींदार या व्यापारी लोगों को **"काम देते हैं"** या वे ग़रीबों को रोज़गार **"देते हैं।"** मिसाल के लिए, कहा जाता है कि पड़ोसी कारखाना या पड़ोस का बड़ा फार्म स्थानीय किसानों की **"परवरिश करता है।"** लेकिन असल में मजदूर अपनी मेहनत से ही **अपनी परवरिश करते हैं** और उन सबको खिलाते हैं, जो खुद काम नहीं करते। लेकिन जमींदारों के खेत में, कारखाने या रेलवे में काम करने की **इजाज़त पाने के लिए** मजदूर को वह सब **मुफ्त में** मालिक को **दे देना** पड़ता है, जो वह पैदा करता है, और उसे केवल नाममात्र की मजूरी मिलती है। इस तरह असल में न जमींदार और न व्यापारी मजदूरों को काम देते हैं, बल्कि मजदूर अपने श्रम के फल का अधिकतर हिस्सा मुफ्त में देकर सबके भरण-पोषण का भार उठाते हैं।

आगे चलिए। सभी आधुनिक देशों में जनता की गरीबी इसलिए पैदा होती है कि मजदूरों के श्रम से जो तरह-तरह की चीज़ें पैदा की जाती हैं, वे सब बेचने के लिए, मंडी के लिए होती हैं। कारखानेदार और दस्तकार, जमींदार और धनी किसान जो कुछ भी पैदा करवाते है, जो पशुपालन करवाते हैं, या जिस अनाज की बोवाई-कटाई करवाते हैं, वह सब **मंडी में बेचने के लिए**, बेचकर **रुपया** प्राप्त करने के लिए होता है। अब रुपया ही हर जगह राज करने वाली ताकत बन गया है। मनुष्य की मेहनत से जो भी माल पैदा होता है, सभी को रुपये से बदला जाता है। रुपये से आप जो भी चाहें, खरीद सकते हैं। रुपया आदमी को भी खरीद सकता है, अर्थात जिस आदमी के पास कुछ नहीं है, रुपया उसे रुपये वाले आदमी के यहां काम करने के लिए मजबूर कर सकता है। पुराने समय में, भू-दास प्रथा के ज़माने में भूमि की प्रधानता थी। जिसके पास भूमि थी, वह ताकत और राजकाज, दोनों का मालिक था। अब रुपये की, पूंजी की प्रधानता हो गयी है। रुपये से जितनी चाहे ज़मीन खरीदी जा सकती है। रुपये न हो तो ज़मीन भी किसी काम की नहीं रहेगी, क्योंकि हल अथवा अन्य औज़ार, घोड़े-बैल आदि ख़रीदने के लिए रुपयों की ज़रूरत पड़ती है, कपड़े-लत्ते और शहर के बने दूसरे आवश्यक सामान खरीदने के लिए, यहां तक कि टैक्स देने के लिए भी रुपयों की जरूरत होती है। रुपया लेने के लिए लगभग सभी जमींदारों ने बैंक के पास जमीन रेहन रखी। रुपया पाने के लिए सरकार धनी आदमियों से और सारी दुनिया के बैंक-मालिकों से कर्जा लेती है और हर वर्ष इन कर्जों पर करोड़ों रुपये सूद देती है।

रुपये के वास्ते आज सभी लोगों के बीच भयानक आपसी संघर्ष चल रहा है। हर आदमी कोशिश करता है कि सस्ता खरीदे और महंगा बेचे। हर आदमी होड़ में दूसरे से आगे निकल जाना चाहता है। अपने सौदे को जितना हो सके, उतना ज्यादा बेचने और दूसरे से छिपाकर रखना चाहता है।

रुपये के लिए सर्वत्र होने वाली इस हाथापाई में छोटे लोग, छोटे दस्तकार या छोटे किसान ही सबसे ज्यादा घाटे में रहते हैं: होड़ में वे बड़े व्यापारियों या धनी किसानों से सदा पीछे रह जाते हैं। छोटे आदमी के पास कभी कुछ बचा नहीं होता। वह आज की कमाई को आज ही खाकर जीता है। पहला ही संकट, पहली ही दुर्घटना उसे अपनी आख़िरी चीज तक गिरवी रखने के लिए या अपने पशु को मिट्टी के माल बेच देने के लिए लाचार कर देती है। किसी कुलक या साहूकार के हाथ में एक बार पड़ जाने पर वह शायद ही अपने को उनके चंगुल से निकाल पाये। (कुलक - "धनी किसान, जो उजरती मजदूर रखकर या सूद पर रुपया उधार देकर अथवा इसी प्रकार के अन्य उपायों द्वारा लोगों के श्रम का शोषण करते हैं" - लेनिन)। बहुधा उसका सत्यानाश हो जाता है। हर साल हजारों-लाखों छोटे किसान और दस्तकार अपने झोंपड़ों को छोड़कर, अपनी ज़मीन को मुफ्त में ग्राम समुदाय के हाथ सौंपकर उजरती मजदूर, खेत-बनिहार, बे-हुनर मजदूर, सर्वहारा बन जाते हैं। लेकिन धन के लिए इस संघर्ष में धनी का धन बढ़ता जाता है। धनी लोग करोड़ों रूबल (रूस की मुद्रा, जैसे भारत की मुद्रा रुपया है -सं.) बैंक में जमा करते जाते हैं। अपने धन के अलावा बैंक में दूसरे लोगों द्वारा जमा किये गये धन से भी वे मुनाफा कमाते हैं। छोटा आदमी दसियों या सैकड़ों रूबल पर, जिन्हें वह बैंक या बचत बैंक में जमा करता है, प्रति रूबल तीन या चार कोपेक (रूस की मुद्रा की छोटी इकाई जैसे कि भारत में रुपया की छोटी इकाई पैसा है -सं.) सालाना सूद पायेगा। धनी आदमी इन दसियों रूबल से करोड़ों बनायेगा और करोड़ों से अपना लेन-देन बढ़ायेगा तथा एक-एक रूबल पर दस-बीस कोपेक कमायेगा।

इसीलिए सामाजिक जनवादी मजदूर कहते हैं कि जनता की गरीबी को दूर करने का एक ही रास्ता है - मौजूदा व्यवस्था को नीचे से ऊपर तक सारे देश में बदलकर उसके स्थान पर **समाजवादी व्यवस्था** कायम करना। दूसरे शब्दों में, बड़े ज़मींदारों से उनकी जागीरें, कारखानेदारों से उनकी मिलें और कारखाने और बैंकपतियों से उनकी पूंजी छीन ली जाये, उनके **निजी स्वामित्व** को ख़त्म कर दिया जाये और उसे देश भर की समस्त श्रमजीवी जनता के हाथों में दे दिया जाये। ऐसा हो जाने पर धनी लोग, जो दूसरों के श्रम पर जीते हैं, मजदूरों के श्रम का उपयोग नहीं कर पायेंगे, बल्कि उसका उपयोग स्वयं मजदूर तथा उनके चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे। ऐसा होने पर साझे श्रम की उपज तथा मशीनों और सभी सुधारों से प्राप्त होने वाले लाभ तमाम श्रमजीवियों, सभी मजदूरों को प्राप्त होंगे। धन और भी जल्दी से बढ़ना शुरू होगा, क्योंकि जब मजदूर पूंजीपति के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए काम करेंगे, तो वे काम को और अच्छे ढंग से करेंगे। काम के घंटे कम होंगे। मजदूरों का खाना-कपड़ा और रहन-सहन बेहतर होगा। उनकी गुजर-बसर का ढंग बिलकुल बदल जायेगा।

लेकिन सारे देश के मौजूदा निजाम को बदल देना आसान काम नहीं है। इसके लिए बहुत ज्यादा काम करना होगा, लम्बे समय तक दृढ़ता से संघर्ष करना होगा। तमाम धनी, सभी सम्पत्तिवान, सारे **बुर्जुआ** अपनी सारी ताकत लगाकर अपनी धन-सम्पत्ति की रक्षा करेंगे। (बुर्जुआ का अर्थ है सम्पत्ति का मालिक। पूंजीवादी समाज में सम्पत्ति के सभी मालिक बुर्जुआ वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। बुर्जुआ वर्ग कल-कारखानों, ज़मीन आदि का मालिक होता है और मजदूरों और दूसरे मेहनतकश वर्गों के श्रम का शोषण करके मुनाफा कमाता है और अपनी सम्पत्ति बढ़ाता है। बहुत अधिक सम्पत्ति का मालिक बड़ा बुर्जुआ और कम सम्पत्ति का मालिक निम्न-बुर्जुआ कहलाता है। बुर्जुआ यानी वे लोग जो अन्य लोगों के श्रम पर जीते हैं और सर्वहारा यानी वे लोग जो उजरत के लिए दूसरों के वास्ते काम करते हैं। -सं)। सरकारी अफसर और फौज सारे **धनी वर्ग** की रक्षा के लिए खड़ी होगी, क्योंकि सरकार खुद धनी वर्ग के हाथ में है। मजदूरों को परायी मेहनत पर जीने वालों से लड़ने के लिए आपस में मिलकर एक होना चाहिए; उन्हें खुद एक होना चाहिए और सभी सम्पत्तिहीनों को एक ही **मजदूर वर्ग**, एक ही **सर्वहारा वर्ग** के भीतर एकजुट करना चाहिए। मजदूर वर्ग के लिए यह लड़ाई कोई आसान काम नहीं होगी, लेकिन अंत में मजदूरों की विजय होकर रहेगी, क्योंकि बुर्जुआ वर्ग - वे लोग जो पराई मेहनत पर जीते हैं - सारी जनता में नगण्य अल्पसंख्या हैं, जबकि मजदूर वर्ग गिनती में सबसे ज्यादा हैं। सम्पत्तिवानों के खिलाफ मजदूरों के खड़े होने का अर्थ है हजारों के खिलाफ करोड़ों का खड़ा होना।

रूस के मजदूर इस महान लड़ाई के लिए अभी से मजदूरों की सामाजिक जनवादी पार्टी के भीतर एकताबद्ध होने लगे हैं। छिपे-छिपे, पुलिस से बचकर एकताबद्ध होना मुश्किल काम है, तो भी संगठन आगे बढ़ रहा है और मजबूत होता जा रहा है।...

(वसंत 1903 में लिखी गई कृति **'गांव के गरीबों से'** का एक अंश)

जन्मदिन (29 मार्च) के अवसर पर

मैक्सिम गोर्की : मेहनतकश जनता का सच्चा लेखक

दुनिया में ऐसे लेखकों की कमी नहीं, जिन्हें खूब पढ़ाई-लिखाई करने का मौका मिला, पुस्तकालय मिला, शांत आरामदेह घरों में लिखने-पढ़ने का अलग से कमरा मिला और सभाओं-बैठकों-चायखानों में लेखकों-बुद्धिजीवियों की संगत मिली। जिन्हें ऐसी सहूलियतें मिलीं उनमें से बहुतेरों ने खुद को आम जनता की जिन्दगी की परेशानी-बदहाली, दुख -दर्द से जोड़ा, उनके बीच गये और उन्हें इंसाफ दिलाने के लिए साहित्य लिखा। इस तरह वे खाते-पीते, ऊंचे या मध्य वर्ग के होकर भी **जनता के लेखक** बन गये। कुछ ऐसे भी लेखक और कलाकार हुए हैं जो अपने मध्यवर्गीय जीवन की सुख-सुविधाओं को त्यागकर मेहनतकश जनता के बीच गये और उनकी जिन्दगी, सपनों और अन्याय के विरुद्ध उनकी लड़ाई का साहित्य लिखते-लिखते एकदम उन्हीं के होकर रह गये। वे **मेहनतकश जनता के क्रान्तिकारी लेखक** बन गये।

पर जरा उस आदमी की बात सोचिए जो समाज के सबसे गरीब लोगों की गन्दी बस्तियों की गलियों में अनाथ-बेसहारा पल-बढ़कर सयाना हुआ। बचपन से ही पेट भरने के लिए उसने दुकानों में, पाव रोटी बनाने के कारखाने में और नमकसार (नमक बनाने के कारखाने में) काम किया, मल्लाहों के साथ रहा, गोदी मजदूर, रसोइया, अर्दली, कुली, माली और सड़क कूटने वाले मजदूर का काम किया। स्कूल-कालेज की कोई शिक्षा उसे नसीब नहीं हुई। क्या ऐसा व्यक्ति भी एक अमर और महान लेखक हो सकता है जिसकी कलम का लोहा पूरी दुनिया का बड़ा से बड़ा लेखक भी मान ले? जी हां, **मैक्सिम गोर्की** एक ऐसे ही लेखक थे।

आज से 128 साल पहले, 29 मार्च 1828 को **मैक्सिम गोर्की** का जन्म रूस देश में वोल्गा नदी के किनारे एक बस्ती में हुआ। सात वर्ष की उम्र में ही अनाथ हो जाने वाले **अलेक्सी मैक्सिमोविच पेशकोव** (गोर्की का असली नाम) ने बहुत ही जल्दी जान लिया कि जिन्दगी का नाम है एक भयानक संघर्ष का। अनाथ अलेक्सी, मां के प्यार से वंचित, वोल्गा नदी की लहरों से खेलता, मल्लाहों के साथ घूमता-गाता, पेट पालने के लिए तरह-तरह के काम करते हुए सयाना हुआ। समाज के मेहनतकश लोगों, गरीब आवारा लोगों, गंदी बस्तियों के निवासियों और वेश्याओं के बीच जीते हुए गोर्की ने दुनिया की सबसे बड़ी किताब - जिन्दगी की किताब से तालीम हासिल की। मेहनत करके रोटी कमाते हुए उन्होंने मेहनत की कीमत जानी और खुद भोगकर उन्होंने जाना कि अंधेरे तहखानों में जीने वाले अपढ़-अज्ञानी कहलाने वाले लोग ही पूरी दुनिया के वैभव की रचना करते हैं और दर्शन और कला-साहित्य की किताबों के लिए भी कच्चा माल मुहैया कराते हैं। इसी तरह उन्होंने मेहनत के लुटेरों - पूंजीपतियों-व्यापारियों-सूदखोरों-अफसरों से नफरत करना और बगावत करना भी सीखा। गोर्की ने जमाने की रफ्तार और रंग-ढंग को समझा और यह जाना कि दुनिया के इतिहास का वह युग शुरू हो चुका है जब दबे-कुचले, सदियों के सोये मेहनतकश जागेंगे और **मार्क्स** के बताये रास्ते पर चलते हुए

मक्सिम गोर्की

पूंजीवादी सामाजिक ढांचे को नष्ट करने के लिए समाजवादी क्रान्तियों का सिलसिला शुरू कर देंगे। फिर गोर्की बिना देर किये रूस में शुरू हो चुकी मेहनतकश जनता की लड़ाई में जा शामिल हुए।

गोर्की ने स्कूल का मुंह नहीं देखा। पर बचपन से पंद्रह-पंद्रह घण्टे हाड़तोड़ मेहनत वाले काम करते हुए भी उन्होंने अपनी कोशिशों से, लगातार किसी न किसी को गुरू बना कर सीखते हुए पढ़ने-लिखने का भी सिलसिला जारी रखा। फिर रूस के एक बहुत बड़े लेखक **कोरोलेंको** ने उन्हें लेखन-कला की कुछ शिक्षा दी और जल्दी ही वे रूसी मेहनतकशों की जिन्दगी का सच्चा चित्र पेश करने वाले ऐसे लेखक बन गये कि उस समय के बड़े-बड़े लेखक भी दंग रह गये।

चाहते तो गोर्की भी लेखक बनकर, नाम कमाकर सुख भोगते। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। उसी समय रूस में मुख्यतः **प्लेखानोव** नामक रूसी नेता की कोशिशों से मेहनतकशों की क्रान्तिकारी पार्टी बन रही थी। नौजवान **लेनिन** और ऐसे तमाम क्रान्तिकारी इसमें लगे थे। गोर्की भी कम्युनिस्टों के प्रभाव में आये और बड़े-बड़े लेखकों के साथ बैठकबाजी करने के बजाय क्रान्तिकारी आंदोलन के साथ जा जुड़े। इसके साथ ही उनकी लेखनी में नई धार आ गई। दुनिया के सताये गये मेहनतकशों की जिन्दगी के चित्र बनाती, पूंजीवादी राक्षसपने को उजागर करती और उसके खिलाफ बगावत के लिए ललकारती गोर्की की कहानियां, लेख, नाटक और उपन्यास, रूसी क्रान्ति के महान नेता **लेनिन** के शब्दों में, शोषित जनता के अंग बन गये और गोर्की शोषित जनता के सबसे बड़े लेखक बन गये।

1905 में रूस में मेहनतकशों ने पहली क्रान्ति की, जो कुचल दी गई। पर उसने रूसी शासक जार और पूंजीपतियों-जागीरदारों के निजाम की कब्र खोदने में कुदाल की पहली फैसलाकुन चोट का काम किया। इस समय तक छपे गोर्की के दो उपन्यासों, एक नाटक और कुछ कहानियों ने उन्हें एक बड़ा लेखक बना दिया था। पर गोर्की वास्तव में गोर्की बने 1905 की क्रान्ति के वक्त-माहौल की जमीन पर लिखे गये दुनिया के अमर उपन्यास **'मां'** की रचना के बाद। सोर्मोवो कस्बे के मजदूरों के आन्दोलन की सही घटना और वास्तविक चरित्रों को आधार बनाकर गोर्की ने यह उपन्यास लिखा जो रूसी क्रान्ति के ऐन पहले के समय में रूसी मजदूरों की जिन्दगी और क्रान्तिकारी लड़ाइयों का इतिहास बन गया।

पहली बार साहित्य में जीवन को क्रान्तिकारी मजदूर के नजरिये से देखा गया था। पहली बार क्रान्तिकारी मजदूर चरित्रों का चित्रण इस रचना में इतिहास बदलने-बनाने वाले महान नायकों के रूप में हुआ। यह नये किस्म का क्रान्तिकारी यर्थाथवाद था - मेहनतकश वर्ग के क्रान्तिकारी वैज्ञानिक नजरिए से समाज की सच्चाइयों का चित्रण। गोर्की ने इसे **नया मानववाद, क्रान्तिकारी रोमांसवाद** और **समाजवादी यथार्थवाद** कहा। लेनिन ने 'मां' उपन्यास को **मजदूरों के लिए एक जरूरी किताब** बताया। अभी तक पूरी दुनिया की लगभग हर भाषा में यह किताब छप चुकी है। हम समझते हैं, भारत के मेहनतकशों के लिए भी यह एक जरूरी किताब है और तबतक पूरी दुनिया के मेहनतकशों के लिए यह एक जरूरी किताब बनी रहेगी जबतक, आखिरी तौर पर पूंजीवाद का नाश नहीं हो जाता।

गोर्की 1917 की रूसी समाजवादी क्रान्ति के बाद, लम्बे समय तक जीवित रहे, दुनिया के पहले मजदूर राज्य के शानदार कारनामों के गवाह और भागीदार बने रहे और मेहनतकश इंकलाबी लेखकों-कलाकारों की एक पूरी पीढ़ी के शिक्षक, रहनुमा, रहबर बनकर कलम चलाते रहे। सिर्फ सोवियत संघ ही नहीं, पूरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग के पक्षधर लेखकों को उन्होंने क्रान्तिकारी सिद्धान्त और लेखन कला की शिक्षा दी।

गोर्की ने अपने जीवन और लेखन से यह सिद्ध कर दिया कि दर्शन और साहित्य विश्वविद्यालयों में पढ़े-लिखे विद्वानों की बपौती नहीं है। सच्चा और महान साहित्य तो जनता की जिन्दगी और लड़ाई में पूरी तरह शामिल होकर ही लिखा जा सकता है। गोर्की ने यह सिद्ध कर दिया कि जब मेहनतकश खुद कलम उठाकर अपनी जिन्दगी, सपनों और संघर्ष की कहानी लिखेगा तो साहित्य की आत्मा को सातवें आसमान तक उड़ान भरने के लिए पंख लग जायेंगे।

मेहनतकशों और सर्वहारा क्रान्तिकारियों की वर्तमान पीढ़ी ने पूरी दुनिया में, रूस और चीन में पहली मजदूर क्रान्तियों की हार देखी है। पर यह हार अखिरी नहीं है। पूंजीवाद अमर नहीं है। पूरी दुनिया में बूढ़े-जर्जर पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ नई समाजवादी क्रान्तियों की तैयारी शुरू हो चुकी है। तैयारी के इस नये दौर में जरूरत है मैक्सिम गोर्की के सच्चे वारिसों की जो स्वयं गोर्की के ही शब्दों में, **"नये जीवन के निर्माण का आह्वान करें।"**

बोल मजूरे हल्ला बोल

हल्ला बोल भई हल्ला बोल भई हल्ला बोल भई हल्ला बोल
बोल मजूरे हल्ला बोल, बोल मजूरे हल्ला बोल
कांप उठी सरमायेदारी खुलके रहेगी इसकी पोल
बोल मजूरे हल्ला बोल...

खून को अपने बना पसीना तूने बाग लगाया है
कूएं खोदे नहर निकाली ऊंचा महल उठाया है
चट्टानों में फूल खिलाए शहर बसाए जंगल में
अपने चौड़े कन्धों पर दुनिया को यहां तक लाया है
बांकी फौज कमेरों की है, तू है नही भेड़ों की गोल
बोल मजूरे हल्ला बोल...

गोदामों में माल भरा है नोट भरे हैं बोरों में
बेहोशों को होश नहीं है नशा चढ़ा है जोरों में
इसका दामन उसने फाड़ा उसका गिरेबां इसके हाथ
कफनखसोटों का झगड़ा है होड़ मची है चोरों में
ऐसे में आवाज उठा दे, ला मेरी मेहनत का मोल
बोल मजूरे हल्ला बोल...

सिहर उठेगी लहर नदी की सुलग उठेगी फुलवारी
कांप उठेगी पत्ती-पत्ती चटखेगी डारी-डारी
सरमायेदारों का पल में नशा हिरन हो जाएगा
आग लगेगी नन्दन वन में दहक उठेगी हर क्यारी
सुन-सुन कर तेरे नारों को धरती होगी डावांडोल
बोल मजूरे हल्ला बोल...
हल्ला बोल भई हल्ला बोल, बोल मजूरे हल्ला बोल

● कान्ति मोहन

नई पेंशन योजना : मजदूरों को ठगने-लूटने की एक और साजिश

इस खुली सरकारी धोखाधड़ी और डकैती के खिलाफ बड़ी ट्रेडयूनियनों और नकली वामपंथियों का महज रस्मी विरोध क्या बताता है?

पिछले कुछ महीनों से टेलीविजन और अखबारों में विज्ञापनों के जरिए नरसिंह राव की सरकार लगातार और जोर-शोर से प्रचार करके यह बताने की कोशिश कर रही है कि उसके द्वारा लागू की गई **'कर्मचारी पेंशन योजना, 1995'** संगठित क्षेत्र में काम करने वाले मजदूरों-कर्मचारियों के लिए बेहद लाभकारी है।

ताज्जुब की बात है कि नई आर्थिक नीति लागू करके जिस सरकार ने हर वर्ष लगभग 50 लाख मजदूरों की छंटनी की है और नई भर्तियां लगभग बंद कर रखी है, जिस सरकार ने बेरोजगारी का आंकड़ा 20 करोड़ तक पहुंचा दिया है, जिस सरकार ने तनख्वाहों में बढ़ोत्तरी लगभग रोक दी है, जो सरकार लगातार पूंजीपतियों और विदेशी कम्पनियों को ज्यादा से ज्यादा ऐसी छूटें देती जा रही है कि वे मजदूरों को स्थायी नौकरी देकर तमाम सेवा शर्तों के लफड़े में पड़ने के बजाय ठेके पर ये टेम्परेरी और कैजुअल मज़दूरों से काम कराकर उनकी मेहनत मिट्टी के मोल खरीदें और जो सरकार स्वास्थ्य, शिक्षा, राशन, किराया भाड़ा जैसे जनकल्याण या जनसुविधा के खर्चों में लगातार कटौती करती जा रही है; उसी सरकार के पेट में मजदूरों और उनके परिवारों की चिन्ता को लेकर अचानक भला मरोड़ कैसी उठने लगी?

दरअसल नई पेंशन योजना संबंधी सभी सरकारी दावे और प्रचार सफेद झूठ, मक्कारी भरी धोखाधड़ी और मजदूरों की मेहनत की कमाई की खुली डकैती को ढंकने वाले पर्दे के अलावे और कुछ भी नहीं है। पूंजीवादी लूट को चरम सीमा तक बढ़ाने वाली नई आर्थिक नीति का ही यह एक अंग है। साथ ही, इसके पीछे एक और कुटिल चाल है। आम मज़दूर जबतक सरकार की पूरी साजिश को समझेंगे तबतक लोकसभा चुनाव बीत चुके रहेंगे और कांग्रेसियों को यह मौका मिल जायेगा कि वे मज़दूरों को फुसला-बहकाकर उनके वोट अपनी झोली में डाल सकेंगे। वैसे उनकी यह चाल कितनी सफल होगी यह तो समय बतायेगा, पर इतना जरूर है कि आंकड़ों के जटिल हिसाब-किताब और करतब से परिचित नहीं होने के कारण, शंकित होने के बावजूद मज़दूर अभी पूरी साजिश को समझ नहीं पा रहे हैं।

आइये, इस धोखाधड़ी और लूट का थोड़ा खुलासा करें।

यह सभी जानते हैं कि मजदूरों-कर्मचारियों के लम्बे संघर्ष के बाद कर्मचारी परिवार पेंशन योजना 1971 में लागू हुई थी। इस योजना के मुताबिक, मज़दूर के रिटायर होने के बाद पेंशन देने के लिए एक मद बनाया गया जिसमें मजदूर, मालिक और सरकार - तीनों को मज़दूर के वेतन के 1.17 फीसदी की दर से अंशदान करना था। तब से इस मद में अरबों रुपये सरकार के पास बैंकों में जमा होते रहे। जाहिर सी बात है कि इस जमा रकम को सरकारी उद्योगों और टाटाओं-बिड़लाओं के उद्योगों में पूंजी के रूप में लगाकर सरकार खरबों- खरबों की कमाई करती रही। यानी मज़दूर के खून-पसीने की बचत को ही मज़दूरों को लूटने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा। खैर, यह तो पूंजीवाद की आम बात है। बैंक और बीमा और तरह-तरह की बचत-योजनाएं तो हैं ही इसलिए कि मज़दूर के दस रुपये से पचास रुपये कमाये जायें और ब्याज जोड़कर ग्यारह रुपये मज़दूर को लौटाकर उस पर अहसान भी लादा जाए। इसीलिए मज़दूरों और आम जनता को किफायतशारी, वैराग्य और बचत का पाठ पढ़ाया जाता है कि श्रम की सीधी लूट के अलावा बचत के नाम पर भी कामगारों की कमाई लूटकर सरकार और पूंजीपति उसे पूंजी के रूप में लगाकर अपने कारोबार ज्यादा से ज्यादा फैला सकें। यह तो पहले से ही होता रहा है। अब नई पेंशन योजना की नई धोखाधड़ी को जानने के लिए आगे बढ़ा जाये।

1971 में कर्मचारी पेंशन योजना लागू होने के बाद, सरकार के पास ई. पी.एफ (कर्मचारी भविष्य निधि योजना) के मद में (जमा रकम को उद्योगों में लगाकर कमाई गई कई गुनी रकम के अलावा) कुल 50 अरब रुपये नई पेंशन योजना लागू होने के समय जमा थे। अब नई पेंशन योजना लागू होने के बाद इसकी शुरुआती पूंजी के तौर पर सरकार ने इस पूरी रकम को हड़प लिया है। इस शुरुआती रकम पर 12 फीसदी सालाना ब्याज की दर से ब्याज की कुल रकम 6 अरब रुपये बनती है। इस मद में सरकार ने जो अपना पिछला हिस्सा दिया ही नहीं है, वह रकम 2 अरब 11 करोड़ 56 लाख रुपये है। इस बकाया रकम के मूलधन पर चक्रवृद्धि आधार पर ब्याज की रकम 1 अरब 38 करोड़ 44 लाख रुपये बनती है। इस तरह नरसिंह-मनमोहन डाकू गिरोह मज़दूरों के कुल 53 अरब 50 करोड़ रुपये हजम कर गया और डकार तक नहीं लिया।

और सिर्फ इतना ही नहीं है। अभी तक ई.पी.एफ.एस. के अंतर्गत कर्मचारी अपनी मासिक तनख्वाह का 8.33 फीसदी भविष्यनिधि में जमा करता था और इतनी ही रकम मालिक जमा करता था। रिटायर होने के बाद कर्मचारी पूरी रकम ब्याज सहित पा जाता था। अब नई पेंशन योजना के अंतर्गत कर्मचारी भविष्यनिधि के रूप में सिर्फ आधी रकम ही पा सकेगा। शेष आधी रकम और ब्याज सरकार ले लेगी। इस रकम पर 12 फीसदी सालाना की दर से जो ब्याज बनेगा उसी से कर्मचारी को पेंशन बनेगी। इस बीच कर्मचारी की मौत हो जाये तो उसकी पत्नी को आधी पेंशन मिलेगी। साथ ही उसके 25 वर्ष से कम उम्र के दो बच्चों को पेंशन का 13 फीसदी मिलेगा बशर्ते कि वह लड़का हो तो बेरोजगार हो और लड़की हो तो अविवाहित। यानी कर्मचारी के आश्रितों को उसकी पेंशन का सिर्फ 63 फीसदी ही मिल सकेगा।

वैसे तो सरकार यह प्रचार कर रही है कि रिटायर होते समय कर्मचारी यदि अपनी पूंजी वापस लेने के कम पेंशन लेने का विकल्प चुने तो महज 10 फीसदी कम पेंशन लेने पर उसकी पूंजी 20 वर्ष बाद वापस कर दी जायेगी। इसमें सरकारी धोखाधड़ी के गणित को जानना बहुत कठिन नहीं है। मजदूर प्रतिमाह यदि 12 फीसदी ब्याज दर पर अपने वेतन का दस फीसदी हिस्सा बैंक या किसी अन्य स्कीम में जमा करे (यानी नई पेंशन योजना के अंतर्गत वेतन से काटी जाने वाली रकम उसी ब्याज दर पर) पर उसे बीस वर्षों बाद उतनी ही रकम मिलेगी जितनी उसे तब मिलती यदि वह कम पेंशन लेने का विकल्प चुनता। तब असली पूंजी कहां गई? जाहिर है, सरकार ने मार लिया।

ध्यान देने की बात यह भी है कि यह नई पेंशन योजना सिर्फ 5000 रुपये प्रतिमाह तक वेतन पर ही लागू होगी। यानी यह डाका सिर्फ मजदूरों और निचले मझोले तबके के लोगों की जेब पर ही डाला जा रहा है। ऊपर के लोग इससे मुक्त हैं। अंधेरगर्दी यह है कि इस नई योजना के अंतर्गत आने वालों के लिए इसमें शामिल होने की बाध्यता है। उनके सामने दूसरा विकल्प नही।

यह है सरकारी डकैती का खुलासा। जाहिर है, इन मजदूर-विरोधी नीतियों को लागू करने के लिए सरकार पर विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और साम्राज्यवादी चौधरियों का दबाव है। देशी लुटेरों की भी इसमें दोनों हाथ चांदी है। **तब क्या कर रहे हैं सीटू, एटक, इंटक, एच.एम.एस., बी.एम.एस. आदि के नेतागण?** दरअसल सिर्फ दुअन्नी-चवन्नी की लड़ाई में मजदूरों को लगातार उलझाये रखने वाले और मज़दूरों की इंकलाबी ताकत को मंद कर देने वाले ये भूजाछोर नेता अब बयान देकर महज रस्मी विरोध करने या एक दिन के टोकन स्ट्राइक से आगे जाने की हिम्मत ही खो चुके हैं। इनका काम सिर्फ सत्ता की दलाली करके सुविधा भोगना रह गया है। गरमागरम बातें और रस्मी आंदोलन तो ये सिर्फ अपनी दुकानदारी चलाने के लिए करते हैं।

अब राह एक ही है। मज़दूर वर्ग को अपने आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक हकों के लिए भी लड़ना होगा। उसे एकजुट होना होगा। उसे पूंजीवादी सत्ता का आज का असली रूप पहचानना होगा और अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी याद करनी होगी। नहीं तो, एक-एक करके उसके सभी अधिकार छिनते चले जायेंगे। ट्रेड यूनियन आंदोलन को इंकलाबी रूप देने के लिए एक-एक कामगार के उठ खड़े होने का वक्त आ गया है।

मालिक लोग आते है, जाते है
कभी नीला कुर्ता पहनकर, कभी सफेद, कभी हरा
तो कभी लाल कुर्ता पहनकर।
महान है मालिक लोग
पहले पांच साल पर आते थे
पर अब तो और भी जल्दी-जल्दी आते है
हमारे द्वार पर याचक बनकर।
मालिक लोग चले जाते है
तुम वहीं के वहीं रह जाते हो
आश्वासनों की अफीम चाटते
किस्मत का रोना रोते; धरम-करम के भरम में जीते ।
आगे बढ़ो! मालिकों के रंग-बिरंगे कुर्ते को नोचकर
उन्हें नंगा करो।
तभी तुम उनकी असलियत जान सकोगे।
तभी तुम्हें इस मायाजाल से मुक्ति मिलेगी।
तभी तुम्हें दिखाई देगा अपनी मुक्ति का रास्ता।

फिर चुनाव?

क्या अब भी कोई उम्मीद
बाकी बची है?
रोज-रोज तुम अपनी ही
कब्र खोदते रहोगे
तो इस जालिम हुकूमत की
कब्र कौन खोदेगा?
कौन सी राह?
- चुन लो
इलेक्शन या इंकलाब?

साम्राज्यवादी डाकुओं की बढ़ती लूट,
देशी सरमायेदारों की फूलती थैलियां,
मेहनतकशों की बढ़ती तबाही,
बेरोजगारी, आसमान छूती महंगाई,
छंटनी-तालाबंदी, तबाही-बर्बादी,
काले कानून, लाठी-गोली का प्रजातंत्र,
बिकता न्याय,
अराजकता, लूटपाट, गुण्डागर्दी,
दलाली, कमीशनखोरी, भ्रष्टाचार,
मण्डल-कमण्डल, दंगे-फसाद,
भ्रष्ट सरकार, झूठी संसद, नपुंसक विरोध
इनसे निजात पाने की राह क्या है?
इलेक्शन या इंकलाब?

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वानी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : (मुद्रण प्रभाग), राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ। सम्पादक : डा. दूधनाथ सम्पादकीय कार्यालय : 69 बाबा का पुरवा (पुराना), पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ